THE TIMES OF INDIA

Date:09-09-23

Continental Shift?

Why it's not quite Asia's century yet

TOI Editorials

During a brief visit to Indonesia this week for the Asean-India summit and the East Asia summit, PM Modi referred to the 21st century as the 'Asian century'. The term began to gain traction in the 1990s when East Asia was the lodestar for economists seeking a universal template to crank up the pace of economic growth. Asia today is the world's primary economic growth engine and home to the largest middle class. Three of the five biggest economies today are in Asia.

It's not just economic competitiveness that leads to the label. Cultural richness stemming from being home to three of the four oldest river valley civilisations is complemented by contemporary Asia's global impact on popular culture and food. Yet, there remain sceptics. One argument questions the very notion, arguing that Asia is not a natural bloc but more a creation of European geographers. Between central Asian republics and East Asian 'tiger economies', there's not much of an overlap. But the more serious critique isolates factors beyond economics. Advocates of this argument say that if the 20th century was the American one, it was not just because of its economy or Hollywood. Bretton Woods is not just an American location. It represents the hegemony that shaped institutions of global governance.

Where is Asia's influence? There's no clear answer now. Modi's speech called for the need to build a rules-based order. The remarks were directed against China, which may be the only strategic rival to the US but faces a big pushback to its leadership in Asia. In other words, Asia itself represents a battlefield of ideas. It's the world's most economically dynamic region, with deep integration through trade. But 'Asian century' is nowhere near being a done deal.

THE HINDU

Date:09-09-23

Eastern hedge

India needs to build closer ties with ASEAN for economic, strategic reasons.

Editorial

Prime Minister Narendra Modi's whistle-stop summit sojourn to the Indonesian capital of Jakarta earlier this week was primarily aimed at deepening India's engagement with the economically significant grouping of 10 Southeast Asian nations. Coming on the eve of India's hosting of the G-20 summit in New Delhi as the current holder of the bloc's presidency, Mr. Modi's presence at the annual ASEAN-India summit was an opportunity to cement traditional ties with the neighbouring Asian economies at a time of heightened global trade uncertainty. As the trade facilitation body UNCTAD noted in its June 21 'Global Trade Update', the 'outlook for global trade in the second half of 2023 is pessimistic as negative factors' including downgraded world economic forecasts, persistent inflation, financial vulnerabilities and geopolitical tensions dominate. Against this backdrop, the joint leaders' statement on 'Strengthening Food Security and Nutrition in Response to Crises' at the ASEAN-India summit underscores the shared vulnerability the region perceives in the face of the ongoing heightened global food insecurity, which has been exacerbated by the war in Ukraine, climate change and national policy responses to inflationary pressures. India's recent curbs on export of rice have triggered some alarm, with the prices of the regional staple reportedly nearing a 15-year high. The onset of an El Niño, which is historically associated with disruptive weather events, queers the ground further, and ASEAN leaders are justifiably wary.

Mr. Modi's pitch, laying stress on the need for a rules-based post-COVID-19 world order and a free and open Indo-Pacific, was clearly directed at members among the Asian bloc who are increasingly disquieted by China's recent muscle flexing and claims over the South China Sea. The Prime Minister's not-so-veiled message to the ASEAN members is that India is a more reliable long-term strategic and economic partner, which has no territorial ambitions that could discomfit them. India also sought to position itself as a voice to amplify the concerns of the Global South, stressing that it would be mutually beneficial for all. For India, grappling as it is with an underwhelming free trade agreement (FTA) with the 10-nation grouping, trade ties with the eastern economies have grown in volume but asymmetrically, with imports far outpacing the country's exports. The widening trade deficit and the perception that Chinese goods are taking advantage of lower tariffs under the FTA to find their way into the Indian market, have among other factors precipitated a review of the pact that is likely to be completed in 2025. In the meantime, India needs to stay closely engaged with the ASEAN members both as a trade hedge against the slowdown in its main western markets and to highlight its significance as an all-weather ally.

दैनिक भास्कर

Date:09-09-23

हम भारत भाग्य विधाता भी कहते हैं और जय हिन्द भी

बरखा दत्त, (फाउंडिंग एडिटर, मोजो स्टोरी)

पिछले कुछ दिनों से बहस चल रही है कि क्या इंडिया का नामकरण अधिकृत रूप से भारत किया जा सकता है, जबकि संविधान का पहला अनुच्छेद स्पष्ट रूप से 'इंडिया दैट इज़ भारत...' कहकर राष्ट्र का दोहरा नामकरण करता है। इसकी क्रोनोलॉजी समझें। यह बात सबसे पहले संघ प्रमुख मोहन भागवत ने कही थी कि भारत को इंडिया पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके कुछ दिनों बाद जब राष्ट्रपति की ओर से जी-20 नेताओं को निमंत्रण पत्र भेजे गए तो वहां उन्हें प्रेसिडेंट ऑफ भारत की तरह सम्बोधित किया गया था। इस पर विपक्ष की तीखी प्रतिक्रिया आई। क्योंकि संविधान ने राष्ट्र के संवैधानिक प्रमुख को प्रेसिडेंट ऑफ इंडिया निर्दिष्ट किया है, जिसे हिंदी में भारत के राष्ट्रपति कहा जाता है। विपक्ष ने पूछा कि क्या इसे बदलने के लिए संविधान में संशोधन किया जाएगा और क्या यह विपक्षी-गठबंधन का नामकरण इंडिया करने की प्रतिक्रिया में है?

जल्द ही बहस ने जोर पकड़ लिया। अमिताभ बच्चन और वीरेंद्र सहवाग ने इस पर टिप्पणियां कीं। अक्षय कुमार ने अपनी आगामी फिल्म की टैगलाइन बदल ली। प्रधानमंत्री इंडोनेशिया यात्रा पर गए तो अधिकृत घोषणा की गई कि भारत के प्राइम-मिनिस्टर आसियान-इंडिया समिट में शामिल होने जा रहे हैं! एक ही वाक्य में भारत और इंडिया शब्दों का इस्तेमाल करना विडम्बनापूर्ण था और इससे सियासत और गरमा गई।

सच कहें तो किसी देश का नाम बदलने की सम्भावनाएं बहुत कम होती हैं, क्योंकि यह अत्यंत कठिन प्रक्रिया है। हालांकि ऐसा नहीं है कि पहले ऐसा नहीं हुआ हो। सीलोन का नाम बदलकर श्रीलंका और बर्मा का नाम बदलकर म्यांमार किया जा चुका है- लेकिन इंडिया नाम के साथ वैसा कोई औपनिवेशिक संदर्भ नहीं जुड़ा है। इंडिया नाम ब्रिटिशों के आगमन से बहुत पहले से प्रचलित था। बचपन से ही हम अपने देश के लिए अनेक नामों का इस्तेमाल करते आ रहे हैं। हम अपनी रीढ़ सीधी करके और सिर उठाकर भारत भाग्य विधाता गाते थे। हम उतने ही गर्व से जय हिन्द भी कहते थे। और हम एक इंडियन या भारतीय के रूप में अपनी पहचान बताते आ रहे हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि हम इनमें से किसी एक नाम को दूसरे से अधिक प्राथमिकता देते आए हों।

स्वयं प्रधानमंत्री ने अपनी हाल की सभाओं, इंटरव्यू, ट्वीट्स आदि में कई बार इंडिया शब्द का उपयोग किया है। हो सकता है मैं गलत साबित होऊं, लेकिन मुझे नहीं लगता कि सरकार अधिकृत रूप से इंडिया नाम को समाप्त करने की कोशिश करेगी। ज्यादा से ज्यादा वो एक प्रस्ताव पास करा सकती है कि अधिकृत पत्रों में भारत शब्द का ज्यादा उपयोग करें। वैसे भी जब जी-20 के लिए दुनियाभर के नेतागण राष्ट्रीय-राजधानी में जुटे हों, तब सरकार देश के नामबदल पर एक शोरगुल भरी बहस क्यों चाहेगी? इस विवाद के शुरू होने तक मैंने जी-20 के लोगो को देखा नहीं था। लेकिन अब उसे ध्यान से देखने पर नजर आता है कि हिंदी में भारत अंग्रेजी में इंडिया से पहले आता है। लेकिन दोनों नाम अपनी जगह पर मौजूद हैं और इससे किसी को कोई समस्या होने का कारण नजर नहीं आता।

सरकार द्वारा बुलाए संसद के पांच-दिवसीय विशेष-सत्र के एजेंडा पर रहस्य की चादर छाई हुई है। अफवाहों का दौर है। अभी तक किसी भी अफवाह की सच्चाई साबित नहीं हुई है, पर उन सबमें सच्चाई का कुछ न कुछ अंश अवश्य हो सकता है। एक देश एक चुनाव पर नया कानून बनाने को लेकर चले अटकलों के दौर के बाद इसके विकल्पों के परीक्षण के लिए पूर्व राष्ट्रपति की अध्यक्षता में एक विशेष पेनल की नियुक्ति हुई। इसके तुरंत बाद देश का नाम बदलने को लेकर अफवाहों का दौर चल पड़ा। एक तीसरी अफवाह भी है, महिला आरक्षण विधेयक पास कराना।

देश का नाम बदलने की बहस के राजनीतिक और सांस्कृतिक निहितार्थ क्या हैं? अव्वल तो इसके माध्यम से भाजपा इंडिया गठबंधन के इर्द-गिर्द निर्मित नैरेटिव को तोड़ना चाह सकती है। वैसे भी लुटियंस दिल्ली से लेकर खान मार्केट गैंग तक, अंग्रेजीदां, सोशल एलीट्स को हाशिए पर धकेलना हमेशा से भाजपा के सांस्कृतिक-युद्ध का हथियार रहा है। इंडिया को लेकर भी वही नीति अपनाई जा सकती है, जबकि यह नाम ब्रिटिश मूल का नहीं है। जो भी हो, प्रधानमंत्री ने हमेशा ही चौंकाने वाले कदमों की नीति अपनाई है। इसमें संदेह नहीं कि संसद के विशेष सत्र पर छाए रहस्य को लेकर मची हड़बड़ी को देखकर सरकार या उसके कुछ अंगों को विशेष आनंद आ रहा होगा। यह भी हो सकता है कि उन पांच दिनों में वह हो, जिसके बारे में हमने अभी बात तक नहीं की है!

दैनिक जागरण

Date:09-09-23

हमारे अंतरराष्ट्रीय उभार का आधार

हर्ष वी. पंत, (लेखक सामरिक मामलों के विश्लेषक एवं आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के उपाध्यक्ष हैं)

नई दिल्ली में जी-20 शिखर सम्मेलन आयोजन के साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत का कद बढ़ना और तय है। भारत भू-राजनीति एवं भू-आर्थिकी केंद्र के रूप में स्थापित हो रहा है। दुनिया नई दिल्ली की दिखाई दिशा के अनुरूप सक्रिय हो रही है। आज भारत के नेतृत्व की साख को कहीं अधिक गंभीरता से लिया जा रहा है और अधिकांश राष्ट्र नई दिल्ली के साथ अपने संबंधों को मजबूत बनाना चाहते हैं। दुनिया में सबसे तेजी से वृद्धि करने वाली बड़ी अर्थव्यवस्था, अधिसंख्य युवा आबादी, गतिशील लोकतंत्र, वंचित वर्गों के कल्याण के भरसक प्रयासों के साथ ही विश्व कल्याण को समर्पित व्यावहारिक विदेश नीति वाला भारत अतीत की तमाम हिचक छोड़कर आगे बढ़ने के लिए तत्पर दिख रहा है। वैश्विक पटल पर भारत का यह उभार अर्से से लंबित था। प्रेक्षकों की हमेशा से यही शिकायत रही है कि भारत संभावनाओं से भरा ऐसा देश रहा है, जो अपनी क्षमताओं के साथ कभी न्याय नहीं कर पाया। अब चूंकि भारत अपने वादों पर खरा उतरने लगा है तो यह भी उसके प्रति वैश्विक झुकाव की एक बड़ी वजह है, क्योंकि इस दौरान नई दिल्ली ने खुद को आंतरिक रूप से मजबूत बनाने के साथ ही भारतीय राज्य की क्षमताओं को भी बखूबी रेखांकित किया है।

पिछले कुछ वर्षों में आंतरिक सुरक्षा की स्थिति में नाटकीय रूप से सुधार हुआ है। कई महत्वपूर्ण, किंतु अशांत क्षेत्रों में शांति बहाल हुई है। आतंकी हमलों के लिहाज से नाजुक देश में आतंकवाद पर व्यापक अंकुश लगाया गया है। जहां घरेलू आतंकी तत्वों पर निर्णायक प्रहार कर उन्हें काबू किया गया तो बाहरी आतंकी शक्तियों को भी किनारे रखने में कामयाबी मिली है। आंतरिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से जम्मू-कश्मीर को अनुच्छेद 370 और 35-ए से मुक्ति दिलाना एक बड़ी उपलब्धि रही। स्वतंत्रता के बाद से कश्मीर घाटी में बनी यथास्थिति भारत के लिए भारी पड़ती जा रही थी। राजनीतिक एवं नीतिगत दृढ़ता का अभाव ही भारतीय नीति-नियंताओं के लिए इस जकड़न को दूर करने में बाधक बना हुआ था। इस लिहाज से मोदी सरकार के सुधारवादी एजेंडे की सफलता न केवल जम्मू-कश्मीर की जनता, बल्कि भारत के भविष्य की दृष्टि से भी बहुत अहम है। यह सही है कि जम्मू-कश्मीर से जुड़े संवैधानिक परिवर्तनों को जमीन पर आकार लेने में

कुछ समय लगेगा, पर इस कदम ने भारत के दुश्मनों की नींद जरूर उड़ा दी है। लद्दाख को लेकर चीन की कुंठा इसी कदम का नतीजा है, क्योंकि इस दांव से समूचे क्षेत्र में भारत की पकड़ मजबूत होगी। यह चीन की बदनीयती और दूरगामी दुस्साहसिक लक्ष्यों के लिए झटका है। आखिरकार भारत अपनी कमजोरी वाले दायरे से बाहर निकलकर खुद को सशक्त बना रहा है तो इससे उनका असहज होना स्वाभाविक ही है, जो पूर्व की यथास्थिति के साथ सहज थे।

पूर्वोत्तर भारत भी एक ऐसा क्षेत्र है, जिस पर हाल के वर्षों में सरकार ने बहुत ज्यादा ध्यान दिया है। स्वतंत्रता के बाद से ही भारतीय नीति-निर्माताओं की ओर से इस क्षेत्र की व्यापक अनदेखी हुई, जिसके कारण भी समझ से परे हैं। अतीत से चला आ रहा यह रुख अदूरदर्शी भी रहा, जबकि यह वही क्षेत्र है जिस पर चीन रह-रहकर अपनी बुरी नीयत दिखाता रहा है। इसके बावजूद नई दिल्ली ने इस क्षेत्र को कभी राष्ट्रीय चेतना के साथ नहीं जोड़ा। इसी कारण भारत मात्र एक 'दक्षिण एशियाई शक्ति' के रूप में सिमटकर रह गया था, जबकि भारत का पूर्वोत्तर दक्षिण पूर्व एशिया के साथ संपर्क की नैसर्गिक कड़ी थी। उस पर ध्यान देकर हिंद-प्रशांत को लेकर भारत का दावा और मजबूत होता। अतीत की इन गलतियों को सुधारते हुए सरकार ने पूर्वोत्तर के साथ व्यापक रूप से सक्रियता आरंभ की है। उसे देश की मुख्यधारा से जोड़ने के गंभीर प्रयास हुए हैं। मणिपुर की हालिया अप्रिय घटनाओं के आलोक में उन प्रयासों को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए, जिनके चलते पूर्वोत्तर भारत में गवर्नेंस के स्तर पर जबरदस्त कायापलट हुआ है। इसी परिवर्तन का प्रभाव है कि पिछले कुछ वर्षों में पूर्वोत्तर भारत में अलगाववादी घटनाओं में भारी कमी आई है। जनता और सरकार में बढ़ते भरोसे का ही प्रमाण है कि पूर्वोत्तर के कई हिस्सों से सैन्य बल (विशेष शक्तियां), अधिनियम यानी अफस्पा को हटा दिया गया है या उसके प्रविधानों में भारी ढील दे दी गई है।

पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने लाल किले से अपने भाषण में वामपंथी चरमपंथ यानी नक्सलवाद को देश के समक्ष सबसे प्रमुख सुरक्षा चुनौती के रूप में चिह्नित किया था। एक समय देश में वामपंथी चरमपंथ से ग्रस्त बड़ा हिस्सा 'लाल गलियारे' के रूप में कुख्यात था। मौजूदा सरकार ने उस लाल गलियारे की रंगत ही बदल दी है। माओवादियों पर सुरक्षा बलों की मजबूत पकड़ से लेकर उनके वित्तीय स्रोतों पर प्रहार के साथ ही माओवादी नेतृत्व की कमर तोड़कर सरकार ने इस चुनौती का एक बड़ी हद तक कारगर तोड़ निकाला है। चाकचौबंद सुरक्षा व्यवस्था और विकास गतिविधियों की जुगलबंदी से सरकार ने माओवाद प्रभावित क्षेत्रों की सूरत बदल दी है। इसका ही परिणाम है कि देश के समक्ष माओवाद अब वैसी चुनौती नहीं है, जैसी कुछ साल पहले तक थी। विकास की बहती गंगा के सामने माओवादियों को अपनी वैचारिकी के दम पर नए रंगरूट भर्ती करना मुश्किल हो रहा है।

केवल आर्थिक समृद्धि या संसाधनों के मोर्चे पर बढ़त ही किसी देश को वैश्विक राजनीति में सिरमौर नहीं बनाती। भारत को लंबे समय तक एक 'सशक्त समाज, किंतु कमजोर राज्य' की दृष्टि से देखा गया। इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि आंतरिक मामलों पर प्रभावी पकड़ के बिना किसी भी देश का अंतरराष्ट्रीय वरीयता अनुक्रम में ऊपर चढ़ना बेहद कठिन है। वैश्विक नेतृत्व पर भारत की पकड़ तबसे मजबूत होनी आरंभ हुई, जब उसने आंतरिक सुरक्षा सुनिश्चित करने की क्षमता एवं प्रतिबद्धता दिखानी शुरू की। एक मजबूत राज्य जो अंदरूनी हलचलों पर नियंत्रण रखने में सक्षम हो, वही बाहरी स्तर पर राष्ट्रीय आर्थिक क्षमताओं का लाभ उठाने की स्थिति में होता है। यही वह सबक है जो भारतीय नीति-निर्माता देर से ही सही, लेकिन अब गंभीरता से सीख रहे हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:09-09-23

सांस्कृतिक जड़ों की तलाश

टी. एन. नाइनन

प्रधानमंत्री के रूप में अपने पहले कार्यकाल के अंत में नरेंद्र मोदी ने कहा था कि उन्हें इस बात का पछतावा है कि वह लुटियंस दिल्ली को नहीं जीत सके। लुटियंस दिल्ली का प्रयोग आमतौर पर अंग्रेजी भाषी कुलीनों या सत्ता प्रतिष्ठान के भारतीय संस्करण के लिए किया जाता है। अब जबकि उनका दूसरा कार्यकाल समापन की ओर बढ़ रहा है तो मोदी सत्ता प्रतिष्ठान पर जीत हासिल करने में नहीं बल्कि उसे विस्थापित करने में कामयाब रहे हैं, जो न केवल राजधानी बल्कि पूरे देश को नया रूप देने की उनकी व्यापक योजना का हिस्सा है।

दिल्ली में इस व्यापक प्रयास का एक हिस्सा पुराने कुलीनों की रिहाइश पर कब्जा या उन्हें ध्वस्त करना भी है। थिंक टैंक और नागरिक समाज के विभिन्न संगठन जो अपने ढंग से काम करना चाहते थे उनकी फंडिंग रोक दी गई है या वहां ऐसे लोगों को तैनात कर दिया गया है जो सरकारी सोच विचार रखते हैं। अन्य संस्थानों से कहा गया है कि वे अपने बोर्ड और अपने चर्चा वाले पैनलों में सरकार के लोगों को स्थान दें।

जिमखाना क्लब (जिसके सदस्यों ने उसे एक सीमित क्लब में बदल दिया है) का प्रशासन अब सरकार के पास है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय को लगातार ऐसे कुलपतियों के अधीन रखा गया है जो संभव होने पर इसके चरित्र को बदल देंगे। जबकि उदारवादी शैक्षणिक संस्थान अशोक यूनिवर्सिटी को उदारवाद की सीमा समझा दी गई है। स्कूली पाठ्यपुस्तकों को नए सिरे से लिखा जा रहा है जबकि एक आज्ञापालन न करने वाले टेलीविजन चैनल को एक मित्र कारोबारी ने खरीद लिया है।

कोई यह दलील भी दे सकता है यह भारत द्वारा लुटियंस दिल्ली पर आक्रमण की कहानी नहीं है जैसा कि प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके बावजूद इसमें 'आइडिया ऑफ इंडिया' यानी भारत के विचार को फिर से बताना शामिल है। दिल्ली के वास्तु मानचित्र में परिवर्तन करके, नए कानूनों को हिंदी नाम देकर, नाम बदलने की होड़ और धर्मनिरपेक्ष स्थानों पर हिंदू छवियों और प्रतीकों को अधिक स्थान देकर सरकार यह स्पष्ट कर रही है कि वह उत्तर औपनिवेशिक भारत की पहचान को पीछे छोड़कर एक 'नए भारत' को जन्म दे रही है जिसकी जड़ें कहीं अधिक गहरी सांस्कृतिक हैं। माफ कीजिएगा नए भारत को क्योंकि इंडिया और हिंदू का भाषाई मूल एक ही है और विदेशी है। बहरहाल नाम बदलने के असर को लेकर चिंता देखने को मिल सकती है। मुद्दा नाम परिवर्तन, सत्ता परिवर्तन और पहचान की राजनीति से परे जाता है। अब इस धारणा को चुनौती पेश की जा रही है कि यूरोपीय जागरण ने ऐसे विचार पेश किए जिनकी सार्वभौमिक वैधता है। उदाहरण के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समता और व्यक्ति के व्यापक अधिकारों को फ्रांस की क्रांति के समय उल्लिखित किया गया था और वे 150 वर्ष बाद संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौम मानवाधिकार घोषणा पत्र में भी नजर आए। भारत के संविधान ने मौलिक अधिकारों के साथ आत्मज्ञान के उन मूल्यों को प्रदर्शित किया। परंतु अलेक्सांद्र दुगिन (कथित तौर पर पुतिन के पसंदीदा) जैसे रूसी विचारक तथा अन्य ने पश्चिमी सार्वभौमिकता को लोकप्रिय राष्ट्रवाद के विरुद्ध खड़ा किया तथा व्यक्तिगत अधिकारों को सामूहिक बेहतरी के समक्ष। तर्क यह है कि सार्वभौमिकता सांस्कृतिक

अंतरों को समाप्त करती है, इसका प्रतिवाद यह होगा कि उदारवाद इन अंतरों से निपटने का मार्ग देता है। सांस्कृतिक सापेक्षता परंपरा से जुड़े कई कुलीनों को स्वाभाविक रूप से आकर्षक लगती है हालांकि अब कोई भी 'एशियाई मूल्यों' की हिमायत नहीं करता। दिक्कत यह है कि सांस्कृतिक जड़ों वाली राजनीतिक व्यवस्था की खूबसूरती अक्सर उसे धारण करने वाले की आंखों में होती है। तमिलनाडु के राजनेताओं ने हाल ही में सनातन धर्म की परंपरा पर हमला किया। चीन चाहेगा कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों में कन्फ्यूशियस के विचारों के अनुरूप सौहार्द का प्रवाह हो, लेकिन क्षेत्र के छोटे देश इस पर आपत्ति प्रकट कर सकते हैं। इस बीच व्लादीमिर पुतिन के मन में रूस और यूक्रेन के इतिहास, संस्कृति और पहचान का लेकर जो समझ है वह हम सब देख ही रहे हैं। जब कोई व्यक्ति संस्कृति में निहित हल की ओर देखता है तो उसे सावधान रहना चाहिए कि यह कहां जा सकता है।

अगर कोई इंगलहार्ट-वेल्जेल के विश्व के सांस्कृतिक मानचित्र का रुख करे जो दो अक्षों पर चित्रित है तो भारत ने पारंपरिक से धार्मिक-तार्किक मूल्यों की ओर नैसर्गिक बदलाव को पलट दिया है। उसने अस्तित्व मूल्यों पर ध्यान केंद्रित किया है जो स्व अभिव्यक्ति के मूल्यों से अलग हैं। यह विश्लेषणात्मक ढांचा हमें समझा सकता है कि आखिर क्यों मोदी सरकार द्वारा दिया जा रहा सांस्कृतिक जोर उन लोगों को प्रभावित कर सकता है जो आत्म साक्षात्कारी कुलीनों का हिस्सा नहीं हैं। भारत कभी विरोधाभासों से मुक्त नहीं रहा है। प्यू रिसर्च के 2017 के एक सर्वे की रिपोर्ट में कहा गया है कि बहुत बड़ी तादाद में भारतीय जहां लोकतंत्र की कीमत समझते हैं वहीं बड़ी तादाद में वे अधिनायकवादी और एक मजबूत नेता के शासन या सैन्य शासन को भी सही मानते हैं। मोदी काफी हद तक एक मजबूत नेता हैं और वह 'भारत को लोकतंत्र की जननी' बताते हुए एकदम सही नजर आते हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date:09-09-23

दिखानी होगी समझदारी

संपादकीय

दक्षिण एशियाई देशों के संगठन आसियान-भारत शिखर सम्मेलन और पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 21वीं सदी को एशिया की सदी बताया। उन्होंने कहा कि इसके लिए कोविड-19 महामारी के बाद नियम आधारित विश्व व्यवस्था का निर्माण करना होगा और मानव कल्याण के लिए सभी प्रयासों की जरूरत है। लेकिन इस संदर्भ में अहम सवाल यह है कि क्या 21वीं सदी को एशिया की सदी बनाने के महती काम में चीन का सहयोग प्राप्त होगा जिसकी विस्तारवादी नीतियों से सभी पड़ोसी देश परेशान हैं। राजनयिक हलकों में चीन के सबसे बड़े पैरोकार भारतीय मूल के एक विद्वान किशोर मेहबूबानी ने 'एशिया की सदी' शीर्षक से एक चर्चित पुस्तक में लिखा है कि दुनिया के पिछले 2 हजार साल के इतिहास में 1800 वर्ष के कालखंड में भारत

और चीन दुनिया के सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाले देश रहे हैं। पिछली दो सदियों के दुर्दिन कालखंड से ऊपर उठकर अभी दोनों देशों के सामने दुनिया का सिरमौर बनने का अवसर है। साथ ही लेखक मेहबूबानी चेतावनी भी दी है कि आपसी संघर्ष के कारण भारत और चीन यह अवसर गंवा भी सकते हैं। अगर दोनों देशों के बीच हुए पिछले कुछ घटनाक्रमों को देखा जाए तो संतोष की बात दिखती है कि पूर्वी लद्दाख में दोनों देशों की सेनाएं आमने-सामने हैं। बावजूद इसके सीमा पर सामान्य रूप से शांति कायम है। भारत और चीन दोनों देश हिंसक वारदात की पुनरावृत्ति रोकने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। चीन का राजनीतिक नेतृत्व यह भी बुद्धिमत्ता परिचय दे तो संबंधों को पटरी पर लाया जा सकता है। विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने कई बार दोहराया है कि द्विपक्षीय संबंधों को फिर से पटरी पर लाने के लिए सीमा से सेना को पीछे हटाना तथा सामान्य स्थिति कायम रखना एक आवश्यक शर्त है। लेकिन अफसोस ऐसा नहीं हो रहा। अभी पिछले दिनों की बीजिंग ने 'चीन के मानक मानचित्र' का 2023 संस्करण जारी किया था जिसमें ताइवान, दक्षिण चीन सागर, अरुणाचल प्रदेश और अक्साई चीन को चीनी क्षेत्र के रूप में शामिल किया जिसका भारत समेत कई देशों ने कड़ा प्रतिवाद किया। चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के सामने आत्मावलोकन का अवसर है। यदि सचमुच 21वीं सदी को एशिया की सदी बनाना है तो उसे विस्तारवादी नीति त्यागनी होगी और सीमाओं को लेकर मनमाना रवैया छोड़ना होगा।